

प्रलय का शिलालेख

स

सन् 77 की जुलाई का तीसरा हफ्ता। चमोली जिले की बिरही घाटी में आज एक अजीब सी खामोशी है। यों तीन दिन से लगातार पानी बरस रहा है और इस कारण अलकनंदा की सहायक नदी बिरही का जल स्तर भी बढ़ता जा रहा है। उफनती पहाड़ी नदी की तेज आवाज पूरी घाटी में टकरा कर गूँज भी रही है। फिर भी चमोली-बद्रीनाथ मोटर सड़क से बाईं तरफ लगभग 22 किलोमीटर दूर 6500 फुट की ऊँचाई पर बनी इस घाटी के 13 गाँवों के लोगों को आज सब कुछ शांत सा लग रहा है। आज से सिर्फ सात बरस पहले ये लोग प्रलय की गर्जना सुन चुके थे, देख चुके थे। इनके घर, खेत व ढोर इस प्रलय में बह चुके थे। उस प्रलय की तुलना में आज बिरही नदी का शोर इन्हें डरा नहीं रहा था। कोई एक मील चौड़ी और पांच मील लंबी इस घाटी में चारों तरफ बड़ी-बड़ी शिलाएँ, पत्थर, रेत और मलबा भरा हुआ है, इस सब के बीच से किसी तरह रास्ता बना कर बह रही बिरही नदी सचमुच बड़ी गहरी लगती है। लेकिन सन् 70 की जुलाई का तीसरा हफ्ता ऐसा नहीं था। तब यहां यह घाटी नहीं थी, इसी जगह पर पांच मील लंबा, एक मील चौड़ा और कोई तीन सौ फुट गहरा एक विशाल ताल था-गौना ताल। ताल के एक कोने पर गौना गांव था और दूसरे कोने पर दुरमी गांव, इसलिए कुछ इसे दुरमी ताल भी कहते थे। पर बाहर से आने वाले पर्यटकों के लिए यह बिरही ताल था, क्योंकि चमोली-बद्रीनाथ मोटर-मार्ग पर बने बिरही गांव से ही इस ताल तक आने का पैदल रास्ता शुरू होता था। ताल के ऊपरी हिस्से में त्रिशूल पर्वत की शाखा कुंवारी पर्वत से निकलने वाली बिरही समेत अन्य छोटी-बड़ी चार नदियों के पानी से ताल में पानी भरता रहता था। ताल के मुंह से निकलने वाले अतिरिक्त पानी की धारा फिर से बिरही नदी कहलाती थी। जो लगभग 18 किलोमीटर के बाद अलकनंदा में मिल जाती थी। सन् 70 की जुलाई के तीसरे हफ्ते ने इस सारे दृश्य को एक ही क्षण में बदल कर रख दिया।

दुरमी गांव के प्रधानजी उस दिन को याद करते हैं, 'तीन दिन से लगातार पानी बरस रहा था। पानी तो इन दिनों में हमेशा ही गिरता है, पर उस दिन की हवा कुछ और थी। ताल के पिछले हिस्से से बड़े-बड़े पेड़ बह-बह कर ताल के चारों ओर चक्कर काटने लगे थे, ताल में उठ रही लहरें उन्हें तिनकों की तरह यहां से वहां, वहां से यहां फेंक रही थीं। देखते-देखते सारा ताल पेड़ों से ढंक गया। अंधेरा हो चुका था, हम लोग अपने-अपने घरों में बंद हो गए। हम घबरा रहे थे कि आज कुछ अनहोनी होकर रहेगी।' खबर भी करते तो कैसे करते? जिला प्रशासन उनसे 22 किलोमीटर दूर था। घने अंधेरे ने इन गांववालों को उस अनहोनी का चश्मदीद गवाह न बनने दिया, पर इनके कान तो सब सुन रहे थे। प्रधानजी बताते हैं, 'रात भर भयानक आवाजें आती रहीं फिर एक जोरदार गड़गड़ाहट हुई और फिर सब कुछ ठंडा पड़ गया।' ताल के किनारे की ऊंची चोटियों पर बसने वाले इन लोगों ने सुबह के उजाले में पाया कि गौना ताल फूट चुका है, चारों तरफ बड़ी-बड़ी चट्टानें, हजारों पेड़ों का मलबा, और रेत-ही-रेत पड़ी है।

ताल की पिछली तरफ से आने वाली नदियों के ऊपरी हिस्सों में जगह-जगह भूस्खलन हुआ था, उसके साथ सैकड़ों पेड़ उखड़-उखड़ कर नीचे

चले आए थे। इस सारे मलबे को, टूट कर आने वाली बड़ी-बड़ी चट्टानों का गौना ताल अपनी 300 फुट की गहराई में समाता गया, सतह ऊंची होती गई और फिर लगातार ऊपर उठ रहे पानी ने ताल के मुंह पर रखी एक विशाल चट्टान को उखाड़ फेंका और देखते-ही-देखते सारा ताल खाली हो गया। घटना स्थल से लगभग तीन सौ किलोमीटर नीचे हरिद्वार तक इसका असर पड़ा था। गौना ताल ने एक बहुत बड़ी प्रलय को अपनी गहराई में समा कर उसका छोटा सा अंश ही बाहर फेंका था। उसने

का जमाना था, प्रशासनिक क्षमता में वे सन् 1970 के प्रशासन से ज्यादा कुशल साबित हुए। उस समय जन्म ले रहे गौना ताल के ऊपर बसे एक गांव में तारघर स्थापित किया और उसके माध्यम से ताल के जल स्तर की प्रगति पर नजर रखे रहे। एक साल तक वे नदियां ताल में पानी भरती रहीं।

जलस्तर लगभग 100 गज ऊंचा उठ गया। तारघर ने खतरे का तार नीचे भेज दिया। बिरही और अलकनंदा के किनारे नीचे दूर तक खतरे की घंटी बज गई। ताल सन 1894 में फूट पड़ा, पर सन्

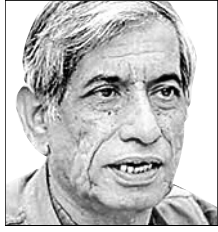
बोट ने ले ली। ताल में पानी भरने वाली नदियों के जलागम क्षेत्र कुंआरी पर्वत के जंगल भी सन 60 से 70 के बीच में कटते रहे। ताल से प्रशासन का संपर्क सिर्फ पर्यटन के विकास के नाम पर कायम रहा-वह ताल के इर्द-गिर्द बसे 13 गांवों को धीरे-धीरे भूलता गया। फिर सन् 70 जुलाई का वह तीसरा हफ्ता आ गया। ताल फूट जाने के बाद सड़क पूरी करने की जरूरत ही नहीं समझी गई। सन् 1894 में गौना ताल के फटने की चेतावनी तार से भेजी थी, पर सन् 1970 में ताल फटने की ही खबर लग पाई।

बहरहाल, अब यहां गौनाताल नहीं है। पर उसमें पड़ी बड़ी-बड़ी चट्टानों पर पर्यावरण का एक स्थायी शिलालेख खुदा हुआ है। इस क्षेत्र में चारों तरफ बिखरी चट्टानें हमें बताना चाहती हैं कि जंगलों खासकर नदियों के जलागम क्षेत्र में खड़े जंगलों का हमारे पर्यावरण पर क्या असर पड़ता है। पर हम 'शिलालेख' को पढ़ने के लिए तैयार नहीं हैं। लेकिन उत्तराखंड का 'चिपको' आंदोलन न केवल इस 'शिलालेख' को पढ़ चुका है, वह अपनी सीमित शक्ति और अति सीमित साधनों से इसकी हिदायतों पर अमल भी कर रहा है।

जुलाई के तीसरे हफ्ते में आंदोलन के कार्यकर्ताओं की एक टुकड़ी लगातार बारिश के बीच गौना ताल तक पहुंची और उसने ताल के मलबे के बीच से बह रही बिरही नदी के किनारे-किनारे मजनु नामक एक पेड़ की कोई तीन हजार कलमें रोपीं...मजनु (विलों) के पेड़ में नदी के किनारों को बांध कर रखने का विशेष गुण है। इस इलाके में मजनु का पेड़ पहली बार ही लगाया गया है।

गाड़ी गांव में रहने वाले आजाद हिंद फौज के एक भूतपूर्व सैनिक ने 1977 के जून माह में सीधे प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर पूछा था कि 'क्या आप हम तेरह गांवों के लोगों को भी अपनी प्रजा मानते हैं? यदि हां तो हमारे लिए बाढ़ के इन दिनों में खाने-पीने का इंतजाम करवाइए। हम मुफ्त में नहीं, लेकिन उचित दाम और उचित दूरी पर राशन मांग रहे हैं। यदि आप राशन नहीं दिलवा सकते तो क्या हम पड़ोसी देश चीन के साथ राशन की बात कर लें?'

1977 में एक भूतपूर्व सैनिक की लिखी यह बात आज भी प्रासंगिक है। आज भी लोग राशन-पानी के लिए तड़प रहे हैं। लेकिन तब भूतपूर्व सैनिक के गुस्से में दम था। आज उत्तराखंड के अनेकों गांवों में वैसा ही गुस्सा उबल रहा है। बाढ़ को उतरने में समय लग सकता है। इस दौरान प्रशासन को किसी भी कीमत पर सस्ता गल्ला बांटने की कोई स्थायी व्यवस्था कर देनी चाहिए और अगले बरस ऐसे असंख्य गांवों में बाढ़ आने से पहले ही ठीक मात्रा में राशन पहुंचाने की स्थायी व्यवस्था बना लेनी चाहिए। बाढ़ तो हर बरस आएगी-जब तक हम गौना ताल के मलबे पर लिखे शिलालेख को पढ़ नहीं पाएंगे, पढ़कर समझ नहीं पाएंगे। -सं.



अनुपम मिश्र
मशहूर पर्यावरणविद्

1977 की एक तबाही के दौरान आजाद हिंद फौज के एक भूतपूर्व सैनिक ने सीधे प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर पूछा था कि 'क्या आप हमें अपनी प्रजा मानते हैं? यदि हां तो हमारे लिए बाढ़ के इन दिनों में खाने-पीने का इंतजाम करवाइए। हम मुफ्त में नहीं, लेकिन उचित दाम और उचित दूरी पर राशन मांग रहे हैं। यदि आप राशन नहीं दिलवा सकते, तो क्या हम पड़ोसी देश चीन के साथ राशन की बात कर लें?' 36 साल बाद आज भी हालात नहीं बदले...



सन् 70 में अपने आप को मिटा कर उत्तराखंड, तराई और दूर मैदान तक एक बड़े हिस्से को बचा लिया था। वह सारा मलबा उसके विशाल विस्तार और गहराई में न समाया होता तो सन 70 की बाढ़ की तबाही के आंकड़े कुछ और ही होते। लगता है गौना ताल का जन्म बीसवीं सदी के सभ्यों की मूर्खताओं से आने वाले विनाश को थाम लेने के लिए ही हुआ था।

ठीक आज की तरह ही सन् 1893 तक यहां गौना ताल नहीं था। उन दिनों भी यहां यह विशाल घाटी ही थी। सन् 93 में घाटी के संकरे मुंह पर ऊपर से एक विशाल चट्टान गिरकर अड़ गई थी। घाटी की पिछली तरफ से आने वाली बिरही और उसकी सहायक नदियों का पानी मुंह पर अड़ी चट्टान के कारण धीरे-धीरे गहरी घाटी में फैलने लगा। अंग्रेजों

1970 की तरह एकाएक नहीं। किनारे के गांव खाली करवा लिए गए थे, प्रलय को झेलने की तैयारी थी। फूटने के बाद 400 गज का जल स्तर 300 फुट मात्र रह गया था। ताल सिर्फ फूटा था, पर मिटा नहीं था। गोरे साहबों का संपर्क न सिर्फ ताल से बल्कि उसके आसपास की चोटियों पर बसे गांवों से भी बना रहा। उन दिनों एक अंग्रेज अधिकारी महीने में एक बार इस दुर्गम इलाके में आकर स्थानीय समस्याओं और झगड़ों को निपटाने के लिए एक कोर्ट लगाता था। विशाल ताल साहसी पर्यटकों को भी न्यौता देता था। ताल में नावें चलती थीं। आजादी के बाद भी नावें चलती रहीं। सन 60 के बाद ताल से 22 किलोमीटर दूरी में गुजरने वाली हरिद्वार बद्रीनाथ मोटर-सड़क बन जाने से पर्यटकों की संख्या भी बढ़ गई। ताल में नाव की जगह मोटर-